चैतन्यज्योतिस्वरूप आत्मा

जिसमें आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्दरस का स्वाद आता है, ऐसे आनन्द के वेदनसहित मैं अपने आत्मा को प्रत्यक्ष जानता हूँ। यह जैन परमेश्वर का मार्ग है। वर्तमान में विदेहक्षेत्र में श्री सीमन्धर भगवान साक्षात् अरिहंतपद में विराजते हैं। इन्द्र व गणधर नतमस्तक होकर बहुत विनयपूर्वक उनकी दिव्यध्वनि सुनते हैं। यह मार्ग उस दिव्यध्वनि में भगवान के द्वारा कहा गया है।

व्रत करो, दया पालो, दान करो, यात्रा करो इत्यादि वीतराग जैनमार्ग नहीं है। क्या ऐसा मार्ग भगवान कहते होंगे? अरे ! ऐसा तो बाल-गोपाल-कुम्भार आदि भी कहते हैं अर्थात् ऐसा उपदेश तो कोई भी दे सकता है, इसमें भगवान के द्वारा कहने जैसी क्या बात है? भाई ! इस जैनमार्ग की बात, मोक्षमार्ग की बात महाभाग्यशालियों को सुनने को मिलती है।

यहाँ आचार्य छद्मस्थदशा में सम्यग्दृष्टि जीवों को कैसा अनुभव होता है ह्न यह बताते हुए कहते हैं कि मैं चैतन्यमात्र ज्योतिरूप आत्मा हूँ। अहाहा ! मैं त्रिकाली ज्ञानसत्त्व, सर्वज्ञस्वभाव, एक ज्ञायकभावस्वरूप चैतन्यमात्र जलहल ज्योति हूँ, राग व पर मैं नहीं हूँ। एक समय की प्रगट पर्याय जितना भी मैं नहीं हूँ तथा यह ज्ञायकस्वभावी आत्मा मेरे ही अनुभव से प्रत्यक्ष जाना जाता है। अहाहा ! यह ज्ञायकभावस्वरूप आत्मा मेरे स्वसंवेदन ज्ञान में प्रत्यक्ष जाना जाता है। इसका अनुभव करने में किसी परद्रव्य का या विकल्प का सहारा लेने की आवश्यकता नहीं है। मैं तो सीधा स्व तथा पर को अपने ज्ञान से ही जानता हूँ।

अरे ! अज्ञानी चौरासी लाख योनियों में चक्कर काटकर जन्म मरण के दुःख भोग रहा है, मर रहा है। जीवती-ज्योति को इसने मार डाला है। यह चैतन्यमात्र ज्योतिरूप आत्मा मैं ही हूँ ह्न ऐसा स्वीकार नहीं करता; किन्तु एक समय की रागादि पर्यायस्वरूप ही मैं हूँ ह्न ऐसा जिसने माना उसने चैतन्यजीव का मानो घात ही कर दिया है; क्योंकि जीवित-सत् के सत्त्व से उसने इन्कार किया है। वस्तु तो वस्तु है, वस्तु का तो नाश नहीं होता; किन्तु पर्याय में चैतन्यजीव का घात हो जाता है। **ह्न प्रवचनरत्नाकर भाग-2, पृष्ठ-138-139**

वीतराग-विज्ञान

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का, घर-घर होय प्रसार।।

वर्ष : २४ २६९ अंक : ५

प्रवचनसार पद्यानुवाद

ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापन महाधिकार

ज्ञान-ज्ञेयविभाग अधिकार

मूर्त पुद्गल बंधे नित स्पर्श गुण के योग से।
अमूर्त आतम मूर्त पुद्गल कर्म बाँधे किसतरह।।१७३।।
जिसतरह रूपादि विरहित जीव जाने मूर्त को।
बस उसतरह ही जीव बाँधे मूर्त पुद्गलकर्म को।।१७४।।
प्राप्त कर उपयोगमय जिय विषय विविध प्रकार के।
रुष-तुष्ट होकर मुग्ध होकर विविधविध बंधन करे।।१७५।।
जिस भाव से आगत विषय को देखे-जाने जीव यह।
उसी से अनुरक्त हो जिय विविधविध बंधन करे।।१७६।।
स्पर्श से पुद्गल बंधे अर जिय बंधे रागादि से।
जीव-पुद्गल बंधे नित ही परस्पर अवगाह से।।१७७।।
आतमा सप्रदेश है उन प्रदेशों में पुद्गला।
परविष्ट हों अर बंधें अर वे यथायोग्य रहा करें।।१७८।।
रागी बाँधे कर्म छूटे राग से जो रहित है।
यह बंध का संक्षेप है बस नियतनय का कथन यह।।१७९।।

ह्न डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

और रागादि समस्त परभाव पर है ह्न ऐसे वारंवार के अभ्यास से स्व-संवेदनज्ञान प्रगट होकर मोक्षसुखकी प्राप्ति होती है।

सीधी सी बात है ह्न जहाँ स्व-पर की एकता का ज्ञान है, वहाँ दुःख है। और जहाँ स्व-पर की भिन्नता का ज्ञान है, वहाँ सुख है। यदि कोई कहे की परलक्षी ज्ञान से सुख है और स्वयं को भी ऐसा लगे की परलक्ष करने से मुझे सुख की प्राप्ति होती है तो यह अज्ञान है, दुःख है।

प्रश्न : अज्ञान के पीछे कर्म का जोर है न ?

उत्तर : कर्म का जोर कहाँ है ? अपनी उल्टी मान्यता का जोर है। स्व और पर ये दोनों जुदा है, उनकी एकता माननेवाले को उल्टी मान्यता का जोर लिये हुए अज्ञान है। कर्म मुझे दुःखी करते हैं ह्न यह मान्यता झूठी है। कर्म और आत्मा तो भिन्न-भिन्न तत्त्व है; तब कर्म आत्मा को दुःखी कैसे कर सकते हैं ? आत्मा स्वयं ही अपने अज्ञान से दुःखी है।

इसप्रकार अज्ञानी को गुरु का उपदेश प्राप्त हो और वह स्वयं भी स्व-पर की भिन्नता का अंर्तजल्प उठाकर स्वयं का गुरु स्वयं बनकर अर्थात् सुदृढ विवेकज्ञान प्रगट करनेवाले गुरु के वाक्य और अपने अभ्यासानुसार विचार करता है कि ह्न स्व और पर अत्यन्त भिन्न तत्त्व हैं। मैं पर का हित नहीं कर सकता और परद्रव्य मेरा हित नहीं कर सकता। जो परपदार्थ मुझसे भिन्न है, वे मेरा हित तीन काल में भी नहीं कर सकते। मेरे हित का कर्ता मैं स्वयं ही हूँ। गुरु का भी यही उपदेश है कि ह्न परद्रव्य में रंचमात्र भी सुख नहीं है, तेरा सुख तुझ में है। ऐसे सुदृढ विवेक को उत्पन्न करानेवाले गुरु के वाक्य अनुसार अभ्यास करना चाहिये। गुरु कुछ अन्य उपदेश देवें और आप स्वयं अन्य ग्रहण करे तो वह गुरु का उपदेश नहीं कहलाता।

प्रवचनसार में आचार्य अमृतचन्द्र अन्तिम श्लोक में कहते हैं की परमागमों में जो थोडा-बहुत तत्त्व कहने में आया है; वह सारा का सारा चैतन्य के समक्ष अग्नि में जलनेवाली वस्तु की तरह स्वाहा हो जाता है अर्थात् चैतन्य का जितना वर्णन परमागमों में प्राप्त होता है, उससे अत्यन्त विस्तृत चैतन्य का स्वरूप है; इसलिये उग्र पुरुषार्थपूर्वक जो भी कहा जाता है वह सब चैतन्य में ही समाहित हो जाता है। **(क्रमशः)**

स्वयं का उपकार कर

पूज्यपाद आचार्य श्री देवनन्दि के प्रसिद्ध ग्रन्थ इष्टोपदेश के ३२ वें श्लोक पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल श्लोक इसप्रकार है ह्न

परोपकृतिमुत्सृज्य स्वोपकारपरो भव।
उपकुर्वन्परस्याज्ञो दृश्यमानस्य लोकवत्।।३२।।

तू लोक के समान मूढ होकर दिखने में आते (शरीरादि) परपदार्थों का उपकार करता है। तू पर के उपकार की इच्छा छोडकर अपने उपकार में तत्पर हो।

(गतांक से आगे...)

यहाँ आचार्यदेव कहते है कि अपना-अपना माहात्म्य-प्रभाव दिखानेपर कौन अपना स्वार्थ नहीं चाहेगा ? जीव कर्म का माहात्म्य बताकर उसका उपकार करता है, तब कर्म अपना हित क्यों नहीं चाहेगा ? इसप्रकार जीव अपने स्वभाव को भूलकर कर्म के उदय में जुडान करता है, तब उसका निमित्त पाकर नवीन कर्म बंधते है तथा जो जीव अपने स्वभाव की महिमा करता है, वह अपना हित करता है; इसलिये तू परद्रव्य का उपकार छोडकर अपने उपकार के लिये तत्पर हो।

पर का उपकार छोड और स्वयं का उपकार कर अर्थात् आत्मा का हित कर। शुभाशुभरागादि भाव और संयोग ठीक है, तो मैं ठीक हूँ ह्न ऐसी पर की बुद्धि छोड। सच्ची वस्तुस्थिति को जानकर हे जीव ! तू तेरे हित में लग जा।

शरीर-कुटुंब-दुनिया अच्छी रहे, तो मैं अच्छा ह्न ऐसा पर का आश्रय करनेवाली तेरी मुर्ख बुद्धि तेरे अज्ञान को ही बताती है, यह अज्ञान तू छोड दे।

जिसप्रकार कोई जीव परद्रव्य को पररूप न जानते हुये पर का उपकार करता है और यदि परद्रव्य को भिन्न जान लेवे तो पर का उपकार छोडकर अपना उपकार करने में लग जाता है; उसीप्रकार सच्ची वस्तुस्थिति जानकर, तत्त्वज्ञानी बनकर अपने आपको सुखी करनेवाले अपनी आत्मा के उपकार में लग जा, यही भगवान का उपदेश है।

अनादिकाल से अज्ञानी जीव देह और कर्म आदि परद्रव्यों पर उपकार करता आ रहा है। शरीर और कर्मादि पर लक्ष करके उनकी सावधानी में यह जीव लगा है

तथा अपनी सावधानी जीव ने छोड दी है, उससे पूज्यपादस्वामी कहते है कि हे जीव ! तू पर का उपकार छोड और स्वयं के उपकार में लग।

जीव कर्मको बाँधता है, तब कर्म का उपकार होता है और जब जीव कर्म को छोडता है, तब आत्मा का उपकार होता है। सज्जन पुरुष परद्रव्य को जबतक अपना मानता था, तबतक एकत्वपूर्वक उसकी सेवा करता था; लेकिन जब यह जानता है की यह सब पर है, तब एकत्वपूर्वक पर की सेवा छोडकर अपनी सेवा में लगता है; उसीप्रकार हे जीव ! तू भी पर की सावधानी छोडकर अपने स्वभाव की सावधानी में तत्पर हो।

यह जीव वास्तव में पर का उपकार कर सकता है ह्न ऐसा नहीं है; लेकिन इसकी मान्यता ऐसी है कि मैं शरीर, कुटुंब, गाँव, देश आदि का उपकार कर सकता हूँ; किन्तु ऐसे भाव में पर के उपकार की भावना है।

अज्ञानी जीव अविद्या-अज्ञान और मोह के वशीभूत होकर पर के उपकार में लगता है; तब उसे आचार्यदेव समझाते हुये कहते है कि अरे मूढ ! तू एकबार अपने स्वयं का उपकार तो कर, स्वयं की ओर ध्यान तो कर।

यहाँ शिष्य पुन: प्रश्न करता है कि पर को और अपने को कौन से उपायपूर्वक भिन्न जानना चाहिये और यदि भिन्न-भिन्न जाने तो कौन से फल की प्राप्ति होगी ?

शिष्य के इस प्रश्न का उत्तर आचार्य पूज्यपादस्वामी आगामी गाथा में देते हैं :ह्न

गुरूपदेशादभ्यासात्संवित्तेः स्वपरान्तरं।
जानाति यः स जानाति मोक्षसौख्यं निरन्तरम्॥३३॥

जो गुरु के उपदेश से अभ्यास द्वारा स्व-संवेदनपूर्वक स्व-पर का भेद जानता है, वह निरन्तर मोक्षसुख को अनुभवता है।

यहाँ दो बातें कहीं गई है। एक तो यह है कि गुरु के उपदेश से और दूसरी यह है कि निरन्तर अभ्यास करनेवाला जिज्ञासु जीव स्व-पर का भेद कर सकता है। गुरु के उपदेश से ह्न ऐसा कहने से अज्ञानी गुरु के उपदेश का और स्वयं किये हुये अभ्यास का निषेध आ गया। सच्चे धर्मात्मा ज्ञानी के उपदेश का अभ्यास करते-करते अपने ज्ञान में स्व-संवेदन का वेदन होता है; तब यह आत्मा आनन्दस्वरूप है, मैं पुण्य-पाप, कर्म, शरीरादि से पर हूँ ह्न इसप्रकार स्व-पर का भेदज्ञान होता है।

यह तो मक्खन जैसी बात है। गुरु का उपदेश यह है की तू अनंत-अनंत आनन्द, ज्ञान और सुख का धाम है। पुण्य-पाप के विकल्प आस्रवतत्त्व हैं। कर्म-शरीरादि अजीवतत्त्व हैं । संसार की बातों का अथवा संसार को संभालने का अभ्यास करे तो वह पाप का अभ्यास है।

प्रश्न : तो फिर संसार को संभालने का अभ्यास नहीं करना चाहिये ?

उत्तर : भाई। यहाँ करने न करने की बात नहीं है। यह तो तेरा मोह है, जिसका अभ्यास किये बगैर तू रहनेवाला नहीं है। यहाँ तो तेरा स्वरूप क्या है ? यह बताना चाहते है; किन्तु तुझे स्व-पर की भिन्नता का अभ्यास नहीं है, तुझे तो उनके एकत्व का अभ्यास है। यदि तू संसार को संभालेगा तो दूसरे का हित होगा और अपने को संभालेगा तो स्वयं का हित होगा।

यहाँ आचार्य कहते है कि गुरु के उपदेशरूपी अभ्यास से तू तेरा स्व-संवेदनज्ञान प्रगट कर। जिससे तुझे स्व-पर का भेदज्ञान होगा। जिस भेदज्ञान का फल मोक्षसुख की प्राप्ति है। संसार को संभालना भले दु:ख हो; उससे भिन्न यहाँ मोक्षका सुख है। आत्मा जिसस्वरूप है, उसीस्वरूप रहे, उसका नाम मोक्ष है।

धर्माचार्य तो उसे कहा जाता है, जिसे स्व-पर की जुदाई का भान हो और जो स्व-पर की भिन्नता का उपदेश देता हो। उनके उपदेश को ग्रहणकर स्व-संवेदनपूर्वक स्व-पर की भिन्नता का अभ्यास होता है, जिसके फलस्वरूप यह जीव अविनाशी मोक्षसुख का अनुभव करता है।

गुरु तो उपदेश देते है; लेकिन आप स्वयं उसे समझे नहीं तो वह उपदेश निष्फल है। गुरु के उपदेश को निमित्त समझकर स्वयं स्वयं का गुरु बनकर स्व-पर की जुदाई करता है तो उसे गुरु के ही उपदेश से भेदज्ञान हुआ ह्न ऐसा कहा जाता है।

भाई ! स्व और पर ये दोनों भिन्न-भिन्न तत्त्व है; लेकिन तू अनादि से इनकी एकता का अभ्यास करते हुए आ रहा है। अब तू स्वयं स्व-पर की भिन्नता का अभ्यास कर तो तेरा उपकार होगा।

गुरु का उपदेश क्या है ? ह्न सुदृढतापूर्वक स्व-पर का विवेकज्ञान प्रगट हो ह्न यह सुनकर मोक्षार्थी जीव ऐसी दृढ श्रद्धा करता है कि आत्मा चैतन्य ज्ञायक स्व है

और रागादि समस्त परभाव पर है ह्न ऐसे वारंवार के अभ्यास से स्व-संवेदनज्ञान प्रगट होकर मोक्षसुखकी प्राप्ति होती है।

सीधी सी बात है ह्न जहाँ स्व-पर की एकता का ज्ञान है, वहाँ दुःख है। और जहाँ स्व-पर की भिन्नता का ज्ञान है, वहाँ सुख है। यदि कोई कहे की परलक्षी ज्ञान से सुख है और स्वयं को भी ऐसा लगे की परलक्ष करने से मुझे सुख की प्राप्ति होती है तो यह अज्ञान है, दुःख है।

प्रश्न : अज्ञान के पीछे कर्म का जोर है न ?

उत्तर : कर्म का जोर कहाँ है ? अपनी उल्टी मान्यता का जोर है। स्व और पर ये दोनों जुदा है, उनकी एकता माननेवाले को उल्टी मान्यता का जोर लिये हुए अज्ञान है। कर्म मुझे दुःखी करते हैं ह्न यह मान्यता झूठी है। कर्म और आत्मा तो भिन्न-भिन्न तत्त्व है; तब कर्म आत्मा को दुःखी कैसे कर सकते हैं ? आत्मा स्वयं ही अपने अज्ञान से दुःखी है।

इसप्रकार अज्ञानी को गुरु का उपदेश प्राप्त हो और वह स्वयं भी स्व-पर की भिन्नता का अंर्तजल्प उठाकर स्वयं का गुरु स्वयं बनकर अर्थात् सुदृढ विवेकज्ञान प्रगट करनेवाले गुरु के वाक्य और अपने अभ्यासानुसार विचार करता है कि ह्न स्व और पर अत्यन्त भिन्न तत्त्व हैं। मैं पर का हित नहीं कर सकता और परद्रव्य मेरा हित नहीं कर सकता। जो परपदार्थ मुझसे भिन्न है, वे मेरा हित तीन काल में भी नहीं कर सकते। मेरे हित का कर्ता मैं स्वयं ही हूँ। गुरु का भी यही उपदेश है कि ह्न परद्रव्य में रंचमात्र भी सुख नहीं है, तेरा सुख तुझ में है। ऐसे सुदृढ विवेक को उत्पन्न करानेवाले गुरु के वाक्य अनुसार अभ्यास करना चाहिये। गुरु कुछ अन्य उपदेश देवें और आप स्वयं अन्य ग्रहण करे तो वह गुरु का उपदेश नहीं कहलाता।

प्रवचनसार में आचार्य अमृतचन्द्र अन्तिम श्लोक में कहते हैं की परमागमों में जो थोडा-बहुत तत्त्व कहने में आया है; वह सारा का सारा चैतन्य के समक्ष अग्नि में जलनेवाली वस्तु की तरह स्वाहा हो जाता है अर्थात् चैतन्य का जितना वर्णन परमागमों में प्राप्त होता है, उससे अत्यन्त विस्तृत चैतन्य का स्वरूप है; इसलिये उग्र पुरुषार्थपूर्वक जो भी कहा जाता है वह सब चैतन्य में ही समाहित हो जाता है। **(क्रमशः)**

जीव उपयोगमय है

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार की दसवीं गाथा पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्म-रसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

गाथा मूलतः इसप्रकार है -

जीवो उवओगमओ उवओगो णाणदंसणो होइ।
णाणुवओगो दुविहो सहावणाणं विहावणाणं ति ।।१०।।

जीव उपयोगमय है। उपयोग ज्ञान और दर्शन है। ज्ञानोपयोग दो प्रकार का है ह्न स्वभावज्ञान और विभावज्ञान।

(गतांक से आगे ...)

चौदह प्रकार के उपयोग कहे, वे सर्व ही चैतन्य को अनुसरण करके वर्तनेवाले परिणाम हैं। आत्मा का ध्रुवस्वभाव ह्न चैतन्यस्वभाव है, उसका अनुसरण करके वर्तनेवाला परिणाम उपयोग है। त्रिकाली परमस्वभाव में रहनेवाली आत्मा की जो सहजज्ञान पर्याय है, वह चैतन्यानुविधायी पर्याय है और कारणस्वभाव दर्शनोपयोग भी ध्रुवचैतन्य का अनुसरण करके वर्तनेवाला उपयोग है। ये दोनों त्रिकाल एकरूप निरुपाधिक है ह्न इनमें उत्पाद-व्यय नहीं है। इनके अतिरिक्त जो बारह उपयोग है, वे उत्पाद-व्ययरूप हैं। वे भी चैतन्य का अनुसरण करके वर्तनेवाले परिणाम हैं।

यह उपयोग जीव का धर्म है और जीव धर्मी है। यहाँ धर्म का अर्थ स्वभाव है, धर्म का अर्थ यहाँ सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप मोक्षमार्ग मत समझना।

जीव ने अपने उपयोग को अपने में धारण कर रखा है, इसलिये वह उपयोग जीव का धर्म है। जैसे दीपक प्रकाश को धारण किये हुये है, वैसे ही आत्मा अपने उपयोग को धारण किये हुए है। आत्मा उपयोगरहित नहीं होता। चौदहों प्रकार के उपयोग एक जीव को एकसाथ नहीं होते। उनमें से कारणस्वभाव ज्ञानोपयोग तथा कारणस्वभाव दर्शनोपयोग तो सभी जीवों के त्रिकाल हैं। शेष

के बारह प्रकार में से कार्यस्वभाव ज्ञानोपयोग और कार्यस्वभाव दर्शनोपयोग तो केवली के ही होते हैं, शेष छद्मस्थ के होते हैं।

ज्ञानोपयोग में स्वभाव और विभाव ह्न ऐसे दो भेद पड़ते हैं। उसमें स्वभावज्ञान उपयोग दो प्रकार का है। कार्यस्वभावज्ञानोपयोग तथा कारणस्वभावज्ञानोपयोग।

यह त्रिकाली द्रव्य-गुण की बात नहीं है, किन्तु चैतन्य के उपयोगरूप परिणमन की बात है। यह दोनों उपयोग अमूर्त, अव्याबाध, अतीन्द्रिय एवं अविनाशी हैं। जीव के स्वरूप की ऐसी बात अन्यत्र कहीं है ही नहीं । सर्वज्ञकथित यह बात जाने बिना सच्ची श्रद्धा नहीं हो सकती । ऐसे जीव को जाने बिना जीव का ज्ञान पूरा नहीं होता । यहाँ तो तत्त्वों की श्रद्धा के लिये यह वर्णन है।

सर्वज्ञ भगवान, उनकी वाणी और उसमें कहे गये तत्त्वों की श्रद्धा, व्यवहारश्रद्धा है। उन तत्त्वों का यहाँ वर्णन चल रहा है।

जीव के उपयोग का जो यह वर्णन चल रहा है, वह उपयोग भी जीव का तत्त्व है, भाव है।

(१) जीव उपयोगमय है ।

(२) वह उपयोग चैतन्य का अनुसरण करनेवाला परिणाम है।

(३) उस उपयोग के ज्ञान और दर्शन ह्न ऐसे दो प्रकार हैं।

(४) ज्ञानोपयोग के स्वभाव और विभाव ह्न ऐसे दो भेद हैं।

(५) स्वभावज्ञानोपयोग भी कारण और कार्य के भेद से दो प्रकार का है। कारणस्वभावज्ञानोपयोग त्रिकाल एकरूप सहजज्ञान है। यहाँ ज्ञान के उपयोग की बात है। आगे '**कारणशुद्धपर्याय**' का वर्णन आयेगा, उसमें सभी गुणों की ध्रुवपर्याय ले लेंगे।

कार्यस्वभावज्ञानोपयोग अर्थात् केवलज्ञान। यह ज्ञानोपयोग एक-एक समय का है तथा चैतन्यस्वभाव का अनुसरण करके वर्तता है। किसी निमित्त, राग अथवा पूर्वपर्याय का अनुसरण करके वह नहीं वर्तता। केवलज्ञानोपयोग, केवलज्ञान पर्याय का भी अनुसरण नहीं करता; अपितु त्रिकालज्ञानस्वभाव और त्रिकाली सहज कारणज्ञानोपयोग का ही अनुसरण करके सादि-अनन्त एक-एक समय करके वर्त रहा है।

जो कार्य उपयोग है, वह कारण उपयोग का ही अनुसरण करके वर्तनेवाला है। त्रिकाली चैतन्यस्वभाव और उसका ध्रुव कारण उपयोग, उनका अनुसरण करके केवलज्ञानरूपी कार्यस्वभावज्ञानोपयोग प्रकट हुआ है। कार्य वर्तमान है और उसका कारण भी वर्तमान वर्तता ध्रुव है। एक सामान्य ध्रुवउपयोग और उसका ध्रुव वर्तमान कारणउपयोग वह विशेष उपयोग; इन दोनों का अनुसरण करके कार्यस्वभावज्ञानोपयोग प्रकट होता है और सादि-अनन्त उन्हीं के आधार से टिकता है।

जीव तत्त्व है, चैतन्यगुण उसका तत्त्व है, उसका ध्रुवकारणज्ञानोपयोग भी उसका तत्त्व है; उसमें से प्रकट हुआ कार्यस्वभावज्ञानोपयोग भी उसका तत्त्व है। जब इतना सब स्वीकार करे तब आत्मा को स्वीकार किया ह्न ऐसा कहा जाये।

अर्हन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को इसप्रकार जो जानता है, वह अपने ज्ञानस्वभाव की तरफ झुके बिना रहता नहीं। चैतन्य का ज्ञान और उस ज्ञान का सहजरूप उपयोग यह दोनों त्रिकाल हैं। इनका अनुसरण करके केवलज्ञानरूपी कार्य प्रकट होता है।

कार्य प्रकट हो उसका कारण कौन ? उसका कारण त्रिकाल निरुपाधिक परमपारिणामिकभाव से रहनेवाला ऐसा सहजज्ञान है। कारणस्वभावज्ञानोपयोग को किसी उदय, उपशम, क्षयोपशम अथवा क्षायिकभाव की अपेक्षा नहीं है, वह तो त्रिकाल परमपारिणामिकभाव से स्थित है। ऐसा एकरूप सहजज्ञान वह कारणस्वभाव ज्ञानोपयोग है और वही केवलज्ञान का कारण है।

देखो ! पद्मप्रभ मुनिराज ने तो टीका में स्पष्ट वर्णन किया है। अपनी समझ में नहीं आता है, इसलिये मुनिराज के ऊपर आरोप लगाना कि 'मुनिराज ने टीका को कठिन कर दिया है' यह तो अपात्रता है। कारण-कार्य को साथ-साथ रखकर अद्भुत वर्णन किया है।

त्रिकाल परमपारिणामिकभाव में स्थित ऐसा कारणस्वभावज्ञानोपयोग है, वही

केवलज्ञान का कारण है। ऐसे कारण की प्रतीति करने पर केवलज्ञान की शंका नहीं रहती। केवलज्ञानपर्याय काल के कारण नहीं वर्तती; अपितु कारणस्वभावज्ञानोपयोग के आश्रय से ही वर्तती है। परद्रव्य की तो बात ही नहीं; अपितु उसकी पूर्वपर्याय के आश्रय से भी नवीन पर्याय नहीं होती। वर्तमान वर्तता हुआ जो ध्रुवकारणस्वभाव ज्ञानोपयोग है, उसी के आश्रय से यह कार्यस्वभावज्ञान प्रकट होता है।

कारणस्वभावज्ञानोपयोग एकसमय की पर्याय है, परन्तु वह जैसे का तैसा त्रिकाल निरुपाधिक है, निगोद से लेकर सिद्ध तक सभी जीवों में वह उपयोग कर्म की अपेक्षा से रहित एकरूप वैसे का वैसा ही है। जीव तत्त्व का ऐसा स्वभाव है। ऐसे जीव को जाने बिना दूसरे अजीवादि तत्त्वों का वास्तविक स्वरूप जानने में नहीं आ सकता।

एकसमय में प्रत्यक्षरूप से तीनकाल तीनलोक का ज्ञान करे ऐसा जो कार्यस्वभाव ज्ञान है, उसके कारणरूप उपयोग जो सहजज्ञान अथवा कारणस्वभाव ज्ञानोपयोग है, उसको ही अग्रिम गाथाओं में त्रिकाल स्वरूप प्रत्यक्षउपयोग कहेंगे। उसी में तीनोंकाल स्वरूप को प्रत्यक्ष करवाने की शक्ति है, उसमें कभी परोक्षपना नहीं है ह्न अधूरा जाने या पूरा जाने ऐसी अपेक्षा उसमें नहीं है। एकसमय में ध्रुव कारणरूप स्वरूप प्रत्यक्षउपयोग है। मतिज्ञानादि तो पर की अपेक्षावाली हीनाधिक पर्यायें हैं। एकरूप वर्तमान ध्रुवउपयोग के बिना ज्ञानगुण परिपूर्ण सिद्ध नहीं होता और उसके बिना आत्मा सिद्ध नहीं होता।

अहो ! वन में आत्मानन्द में लीन रहनेवाले पद्मप्रभमलधारिदेव को इस टीका का विकल्प उठने पर टीका की रचना हुई है। देखो तो सही ! स्वभावकारण उपयोग और उसके आधार से स्वभावकार्य उपयोग ! यह बात समझने में विशेष पुरुषार्थ चाहिये। यहाँ कारणस्वभावज्ञानोपयोग और कार्यस्वभावज्ञानोपयोग का वर्णन किया।

इसप्रकार स्वभावज्ञानोपयोग का वर्णन पूर्ण हुआ।

अब विभावज्ञानोपयोग का वर्णन करते हैं। वह विभावरूप ज्ञान तीन प्रकार

का है ह्न कुमति, कुश्रुति और विभंग। यह तीनों अज्ञानी के होते हैं। इनका उपयोग भी यद्यपि चैतन्य का ही अनुसरण करके होता है; किन्तु इनकी प्रतीति नहीं होने से पर के कारण उपयोग होता है ह्न ऐसा अज्ञानी मानता है। इसलिये उसका उपयोग मात्र विभावरूप है, जिसके तीन भेद हैं ह्न कुमति, कुश्रुत और कुअवधि। जो त्रिकालस्वभाव का अवलम्बन न लेकर पर के अवलम्बन में उपयोग को जोड़ता है, उस ज्ञान को कुज्ञान कहते हैं। अज्ञानी द्रव्यलिंगी दिगम्बर जैन साधु हो तथा ग्यारह अंग का पाठी हो; तथापि मेरा ज्ञान पर के आश्रय से अथवा विकल्प के आश्रय से हुआ है ह्न ऐसा मानने के कारण उसका समस्त ज्ञान कुज्ञान है। भले ही यहाँ बैठे-बैठे स्वर्ग-नर्क को जान लेवे, फिर भी वह सब कुअवधिज्ञान है, मिथ्याज्ञान है।

इस उपयोग के भेदरूप ज्ञान के भेद अगले दो सूत्रों (११-१२वीं गाथा) द्वारा जानना। उपयोग के दो भेदों में से ज्ञान उपयोग के भेदों का यह वर्णन चल रहा है। ज्ञानोपयोग के कुल नौ भेद हैं, उसमें से इस गाथा में पाँच प्रकार आ गए। (१) कारणस्वभावज्ञानोपयोग (२) कार्यस्वभावज्ञानोपयोग (३) कुमति (४) कुश्रुत (५) कुअवधि। इनमें अन्त के तीन सर्वथा विभावरूप उपयोग हैं। शेष के सम्यक्‌मति, श्रुत, अवधि और मन:पर्यय इन चारप्रकार का वर्णन अग्रिम गाथा में आयेगा। ❊

परमभावस्वरूप भगवान आत्मा

परमभाव भगवान आत्मा का वह मूल स्वभाव है; जिसे ज्ञायकभाव, परमपारिणामिक भाव, त्रिकाली भाव, शुद्धभाव, ध्रुवभाव, आदि अनेक नामों से अभिहित किया जाता है। यही परमभाव वास्तविक जीवतत्त्व है, निज भगवान आत्मा है; इसमें ही अपनापन स्थापित होने का नाम सम्यग्दर्शन है, इसे ही निज जानने का नाम सम्यग्ज्ञान है और इसमें ही जमने-रमने का नाम सम्यक्‌चारित्र है।

अत: मोक्षमार्ग का मूल भी यही परमभावरूप भगवान आत्मा है।

ह्न परमभावप्रकाशक नयचक्र, पृष्ठ : ३६९

ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्न : ज्ञानी, शुद्ध द्रव्य-गुण और शुद्ध पर्याय जितना ही आत्मा मानता है क्या?

उत्तर : ज्ञानी श्रद्धा की अपेक्षा ऐसा मानता है। ज्ञान की अपेक्षा से देखने पर राग का कर्त्तारूप परिणमित होनेवाला जीव स्वयं है ह्न ऐसा ज्ञानी जानता है।

स्फटिकमणी में जो लाल, पीली आदि परछाई पड़ती है, वह उसकी योग्यता से होती है; तो भी स्फटिकमणी के मूल स्वभाव से देखें तो यह रंग उपाधिरूप है, मूलस्वभाव नहीं। उसीप्रकार जीव में पर्यायदृष्टि से देखें तो विकार उसके पर्याय की योग्यतारूप धर्म है, लेकिन द्रव्यार्थिकनय से देखें तो विकार उसका मूलस्वभाव नहीं है।

प्रश्न : द्रव्य शुद्ध है, गुण शुद्ध है और पर्याय में अशुद्धता है। वह कर्म के कारण नहीं होती, तब अशुद्धता कहाँ से आई ?

उत्तर : द्रव्य-गुण त्रिकाल शुद्ध ही है और पर्याय में विकार होता है, वह पर्याय की उस समय की योग्यता से क्षणिक विकार होता है, कर्म से विकार नहीं होता। कर्म के निमित्त का लक्ष्य करके उससमय की योग्यता से ही विकार होता है।

पंचास्तिकाय की ६२वीं गाथा में विकार को पर कारक की अपेक्षा ही नहीं है, ऐसा कहा है; क्योंकि विकार भी उससमय का स्वतंत्र परिणमन है।

प्रश्न : गोम्मटसार में कहा है कि कर्म के उदय से विकार होता है ?

उत्तर : विकारी अवस्था होती है, वह पर्याय की योग्यता के स्वकाल से होती है, कर्म के उदय से नहीं होती, लेकिन निमित्त के आधीन होकर विकार होता है, इस कारण वहाँ निमित्त का ज्ञान कराने के लिये कर्म के उदय से होता है ह्न ऐसा कहा है। समयसार में भी विकार का कर्त्ता पुद्गल कर्म को कहा है; वहाँ दृष्टि का द्रव्य पर जोर वर्तता है, यह बताने के लिये विकाररूप आत्मा नहीं होती ह्न ऐसा बताकर जो अल्प विकार है, उसका कर्त्ता पुद्गलकर्म है ह्न ऐसा कहने में आता है।

प्रवचनसार में कहा है कि विकार का कर्त्ता जीव है। वहाँ यह विकारी परिणमन कर्म का नहीं; किन्तु जीव का ही है ह्न ऐसा बताया है। जहाँ जिस अपेक्षा से कहा हो, वहाँ वह अपेक्षा बराबर समझना चाहिये। तब ही वस्तु का स्वरूप जैसा है, वैसा समझ में आ सकता है।

राग से भिन्न होकर शुद्ध आत्मा का ज्ञान करना सम्यग्दर्शन है। पूजा-भक्ति, यात्रा आदि तो अनन्तबार की, लेकिन आत्मा के सम्यग्ज्ञान बिना भव का अन्त नहीं आया।

प्रश्न : यदि कर्म आत्मा को विकार नहीं कराता है तो आत्मा में होनेवाले विकार का कारण कोन है ? सम्यग्दृष्टि जीव को तो विकार करने की भावना होती नहीं, तथापि उनको भी विकार तो होता है, देखने में आता है ह्न ऐसी स्थिति में कर्म विकार कराता है, यह मानना पड़ेगा कि नहीं ?

उत्तर : नहीं, यह मान्यता खोटी है। आत्मा को अपनी पर्याय के दोष से ही विकार होता है, कर्म विकार नहीं कराता, किन्तु उससमय पर्याय की वैसी ही योग्यता है। सम्यग्दृष्टि को राग-द्वेष करने की भावना नहीं है, तथापि राग-द्वेष होता है, उसका कारण चारित्रगुण की पर्याय की वैसी योग्यता है। राग-द्वेष की भावना नहीं है ह्न यह तो श्रद्धा गुण की पर्याय है और राग-द्वेष होता है ह्न यह चारित्र गुण की पर्याय है। पुरुषार्थ की निर्बलता से राग-द्वेष होता है ह्न ऐसा कहना वह भी निमित्त का कथन है। सचमुच तो चारित्रगुण की ही उससमय की योग्यता के कारण ही राग-द्वेष होता है।

प्रश्न : विकार जब चारित्रगुण की पर्याय की योग्यता से ही होता है तो फिर जब-तक उसमें विकार होने की योग्यता रहेगी, तबतक विकार होता ही रहेगा ह्न ऐसी दशा में विकार टालना जीव के अधीन नहीं रहा ?

उत्तर : एक-एक समय की स्वतंत्र योग्यता है ह्न ऐसा निर्णय किस ज्ञान ने किया ? त्रिकाली स्वभाव में ढले बिना ज्ञान में प्रतिसमय की पर्याय की स्वतंत्रता का निर्णय नहीं हो सकता। जब ज्ञान त्रिकाली स्वभाव का लक्ष्य करके उस ओर झुका, तभी स्वभाव की प्रतीति के बल से पर्याय में से राग-द्वेष होने की योग्यता प्रतिक्षण घटती ही जाती है। जिसने स्वभाव का निर्णय किया, उसकी पर्याय में लम्बे समय तक राग-द्वेष बने रहने की योग्यता नहीं रहती ह्न ऐसा ही सम्यक् निर्णय का बल है।

प्रश्न : भगवान आत्मा विकार का कारक है या अकारक ? विकार परद्रव्य से होता है क्या ? यदि नहीं तो परद्रव्य से परांगमुख होने का उपदेश क्यों दिया जाता है? पर्याय का निर्विकारी होना द्रव्य के आधीन है क्या ? कृपया सब का समाधान कीजिये।

उत्तर : भगवान आत्मा निर्विकार अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड है, वह विकार का कारण है ही नहीं। परद्रव्य की तरफ लक्ष करने से विकार अवश्य होता है; किन्तु परद्रव्य से विकार नहीं होता। परद्रव्य की ओर लक्ष जाने से पर्याय स्वतन्त्रतया अपने से विकाररूप परिणमन करती है। स्वद्रव्य शुद्ध, आनन्दस्वरूप, चैतन्यमूर्ति है, उससे पर्याय निर्विकार नहीं होती; किन्तु स्वद्रव्य का लक्ष करनेपर पर्याय स्वयं अपने से स्वतन्त्रतया निर्विकार होती है। इसके विपरीत परद्रव्य का लक्ष करने से पर्याय स्वत: विकारी होती है।

अत: आत्मा अकेला स्वभाव से राग का अकारक ही है, यदि आत्मा राग का अकारक न हो तो परद्रव्य से हटने का ह्न परद्रव्य का लक्ष छोडने का उपदेश निरर्थक ठहरे; इसलिये परद्रव्य के लक्ष से ही विकार होता होने से परद्रव्य से परांगमुख होने का उपदेश है। विकार होने में परद्रव्य निमित्त है। वह निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध ऐसा सूचित करता है कि आत्मा अकेला स्वभाव से विकार का अकारक ही है।

प्रश्न : परद्रव्य की पर्याय को नहीं करता ह्न यह तो ठीक, तो क्या अपनी पर्याय को भी नहीं करता ?

उत्तर : अपनी पर्याय भी स्वकाल में होती ही है और होगी ही, फिर उसका क्या करना। वास्तव में तो यह ज्ञाता-दृष्टा ही है। प्रयत्नपूर्वक मोक्ष को करो ह्न ऐसा कथन आता है, कमर कसकर मोह को जीतो ह्न ऐसा भाषा में आता है; परन्तु वास्तव में तो इसकी दृष्टि में द्रव्य ही आया है अर्थात् यह ज्ञाता-दृष्टा ही है। ज्ञाता-दृष्टा में अनंत पुरुषार्थ है।

प्रश्न : पर्याय को भी द्रव्य नहीं करता ह्न ऐसा कहकर द्रव्य को बिल्कुल निकम्मा कर दिया ?

उत्तर : अरे भाई ! यह तो अन्तर की मूल बात है। इसमें द्रव्य निकम्मा नहीं हो जाता, अपितु अलौकीक द्रव्य सिद्ध होता है। **(क्रमश:)**

समाचार दर्शन ह्न

भगवान महावीर निर्वाणोत्सव सानन्द मनाया

१. जयपुर (राज.) : यहाँ ज्ञानतीर्थ श्री टोडरमल स्मारक भवन में महावीर निर्वाणोत्सव पर त्रिमूर्ति जिनालय में प्रात: सामूहिक जिनेन्द्र-पूजन के पश्चात् निर्वाण लाडू चढाया गया। तत्पश्चात् **पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल** के प्रासंगिक प्रवचन का लाभ श्रोताओं को प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त **दिग. जैन तेरहपंथी बड़ा मंदिर,** जौहरी बाजार में पण्डित संजीवकुमारजी गोधा के दोनों समय प्रासंगिक विषय पर मार्मिक प्रवचन हुये।

२. देवलाली (नासिक-महा.) : यहाँ पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट के तत्त्वावधान में दिनांक २६ अक्टूबर से २ नवम्बर तक आ. शिक्षण शिविर एवं विधान का आयोजन हुआ।

इस अवसर पर प्रात: **डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल** के सर्वविशुद्धज्ञानाधिकार पर मार्मिक व्याख्यान हुये तथा रात्रि में **ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री, ब्र. हेमचन्दजी 'हेम'** के प्रवचनों का लाभ मिला।

दोपहर में तत्त्वार्थसूत्र की कक्षा पण्डित मधुकरजी जैन, जलगाँव एवं सायंकाल बालकक्षा पण्डित सुनीलजी 'धवल' भोपाल ने ली। इस अवसर पर भ.शांतिनाथ विधान एवं पंच परमेष्ठी विधान का आयोजन हुआ। विधान के सम्पूर्ण कार्य ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री के निर्देशन में पण्डित सुनीलजी 'धवल' ने सम्पन्न कराये।

३. धरमपुर (गुज.) : यहाँ दिनांक ३० अक्टूबर से २ नवम्बर, ०५ तक श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम में **डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल** के आत्मानुभूति स्वरूप एवं प्रक्रिया विषय पर मार्मिक प्रवचन हुये। साथ ही ब्र. राकेशजी एवं पण्डित उत्तमचन्दजी के भी प्रवचनों का लाभ मिला। प्रतिदिन तीनों समय सामूहिक जिनेन्द्र भक्ति एवं रात्रि में सांस्कृतिक कार्यक्रम हुये। दिनांक २ नवम्बर को श्री भरत शाह के निर्देशन में शांतिविधान का आयोजन किया गया।

४. मोटी जहर (खेड़ा-गुज.) : यहाँ निर्वाणोत्सव के अवसर पर ३१ अक्टूबर से ५ नवम्बर तक शिक्षण-शिविर का आयोजन हुआ; जिसमें पण्डित जितेन्द्रसिंह यादव जयपुर के समयसार एवं मोक्षमार्गप्रकाशक पर प्रवचनों का लाभ मिला।

नई दिल्ली में एक सप्ताह समयसार की धूम

दिल्ली : यहाँ कुन्दकुन्द भारती प्राकृत भवन में सिद्धान्त चक्रवर्ती परमपूज्य १०८ आचार्यश्री विद्यानन्दजी मुनिराज के पावन सान्निध्य में दिनांक १६ अक्टूबर से २३ अक्टूबर,२००५ तक समयसार सप्ताह का भव्य आयोजन किया गया।

प्रतिदिन प्रात: ८.३० से ९.३० तथा सायंकाल ३ से ४ तक समयसार की विभिन्न गाथाओं पर विद्वत् परिषद के अध्यक्ष तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के मार्मिक व्याख्यान हुये। विषय को स्पष्ट करने की दृष्टि से महाराजजी द्वारा उठाये गये प्रश्नों का भारिल्लजी द्वारा समुचित समाधान किया गया।

वाचना में पूज्य गणिनी आर्यिका प्रज्ञमतिजी एवं स्वस्ति भट्टारक श्री चारुकीर्तिजी मूड़बिद्री की भी मांगलिक उपस्थिति रही। समागत विद्वानों में सर्वश्री डॉ. दामोदरजी शास्त्री, डॉ. प्रेमसुमनजी जैन, डॉ. त्रिलोकचन्दजी कोठारी, डॉ. फूलचन्दजी 'प्रेमी', डॉ. राजेन्द्रजी बंसल, डॉ. सत्यप्रकाशजी जैन, डॉ. वीरसागरजी जैन, डॉ. अनेकान्तजी जैन, डॉ. कल्पनाजी जैन एवं समन्वय वाणी के सम्पादक श्री अखिलजी बंसल आदि अनेक गणमान्य लोग उपस्थित थे। करणानुयोग पर पूज्य गणिनी आर्यिका प्रज्ञामतिजी का भी सारगर्भित व्याख्यान हुआ।

पूज्य मुनिश्री अपूर्वसागरजी के समाधि-मरण पर विनयांजलि की गई तथा डॉ. देवेन्द्रकुमारजी शास्त्री नीमच के निधन पर श्रद्धांजलि अर्पित की गई। **ह्न सतीश जैन, आकाशवाणी**

ब्र. यशपालजी द्वारा धर्मप्रभावना

जबलपुर (म.प्र.) : यहाँ श्री महावीरस्वामी दि. जैन मंदिर में दिनांक 23 अक्टूबर से 5 नवम्बर, 2005 तक ब्र. यशपालजी जैन जयपुर के प्रात: योगसार प्राभृत एवं रात्रि में कर्म की दस अवस्थाओं के स्वरूप पर मार्मिक प्रवचन हुये।

भगवान महावीर निर्वाणोत्सव के दिन ब्र. यशपालजी एवं जबलपुर मुमुक्षु मण्डल के सभी सदस्य अतिशय क्षेत्र मढीयाजी गये, जहाँ सामूहिक दर्शन-पूजन के पश्चात् स्थानीय विद्वान पण्डित राजेन्द्रकुमारजी एवं ब्र. यशपालजी के प्रवचन का लाभ श्रोताओं को प्राप्त हुआ।

दोपहर में दीपावली विषय पर विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया; जिसमें स्थानीय विद्वान पण्डित नरेन्द्रजी, पण्डित मनोजजी, पण्डित श्रेणिकजी आदि ने अपने विचार रखें।

संस्थाएँ पोस्ट ऑफिस में विनियोजन न करें

भारत सरकार के दिनांक 27 जुलाई, 05 के गेजेट से एक अधिसूचना जारी करते हुये डाकघर नियम 1981 में संशोधन करते हुये नियम बने हैं।

इस संशोधन अनुसार पोस्ट ऑफिस द्वारा केवल व्यक्तिगत खाते में ही जमा राशि (डिपोजीट) स्वीकार की जा सकेगी। अन्य सभी खातेदार डाकघर में जमा अपनी डिपोजीट राशि दिनांक 31 दिसम्बर, 05 तक वापिस ले लेवें। 31 दिसम्बर के बाद इन डिपोजीट पर ब्याज देय नहीं होगा।

यदि संस्थाओं ने ट्रस्ट की डिपोजीट डाकघर में किसान विकास पत्र, अन्य सेविंग स्कीम या टर्म डिपोजीट के रूप में रखी है तो उन्हें यह राशियाँ वापिस लेनी होगी। अत: पोस्ट ऑफिस से सम्पर्क कर डिपोजीट की राशि वापिस लेकर अन्यत्र विनियोजन करें।

संस्थाओं द्वारा गत दो साल से भारत सरकार के 8 प्रतिशत ब्याज के रिजर्व बैंक बॉन्ड में विनियोजन किया जा सकता है। यह सुविधा एच.डी.एफ.सी बैंक अथवा आई.सी.आई. सी.आई बैंक के माध्यम से मिल सकती है। जिन संस्थाओं ने अपना ट्रस्ट चेरिटी कमिश्नर के कार्यालय में रजिस्टर करवाया है, उनको चेरिटी कमिश्नर का रजि. सर्टीफिकेट बताने पर ये बॉण्ड प्राप्त हो सकते हैं। आप अपने नजदीकी बैंको से सम्पर्क कर कार्यवाही कर सकते हैं। **ह्न वसन्तभाई दोशी**

वैराग्य समाचार

१. अकोला निवासी श्री मधुकररावजी उदापुरकर का दिनांक १० सितम्बर को ७२ वर्ष की आयु में देहावसान हो गया है। आप धार्मिक प्रवृत्ति के शांत एवं स्वाध्यायप्रिय व्यक्ति थे। ज्ञातव्य है कि आपकी धर्मपत्नि विदुषी स्नेहलताजी उदापुरकर का तत्त्वप्रचार-प्रसार में सक्रिय योगदान रहता है। आपकी स्मृति में १००१/-रुपये प्राप्त हुये हैं; एतदर्थ धन्यवाद !

२. **नागपुर निवासी विदुषी श्रीमती चिन्ताबाई मिट्ठूलालजी मोदी** का दिनांक २० अक्टूबर, २००५ को प्रात: ७.२५ बजे आत्मचिंतन करते हुये देहावसान हो गया है। आप नागपुर स्वाध्याय मंडल में नीव का पत्थर थीं। यहाँ मुमुक्षु मण्डल में प्रतिदिन आपके प्रवचनों का लाभ मिलता था। आपकी भाषा शैली बहुत सरल थी। पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा संचालित गतिविधियों में सदैव आपका सक्रिय सहयोग रहता था। आपके निधन से नागपुर मुमुक्षु मण्डल को अपूरणीय क्षति हुई है।

३. **भूलेश्वर-मुम्बई** निवासी श्रीमती मैनादेवी धर्मपत्नी श्री मदनलाल जैन (पाटनी) का दिनांक २८ सितम्बर, २००५ को देहावसान हो गया है। आप सरल स्वभावी एवं स्वाध्याय प्रिय महिला थीं। आपकी स्मृति में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट को ५०००/- रुपये प्राप्त हुये हैं; एतदर्थ धन्यवाद !

उक्त सभी के स्वर्गवास पर पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट एवं जैनपथ प्रदर्शक परिवार भावना भाता है कि दिवंगत आत्मायें शीघ्र ही अभ्युदय को प्राप्त हो तथा आपके परिजन तत्त्वज्ञान के अवलम्बन से धैर्य धारण करें। **ॐ शांति !**

डॉ. भारिल्ल के आगामी कार्यक्रम

26 दिस.से 01 जनवरी, 2006	कोलकाता	पंचकल्याणक
13 से 19 जनवरी,2006	सागर	पंचकल्याणक
04 से 11 फरवरी, 2006	कोटा	पंचकल्याणक

ध्यान दें !

साधना चैनल पर डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के प्रवचन प्रतिदिन रात्रि 10.20 से 10.40 बजे तक प्रसारित हो रहे हैं। प्रसारण में किसी वजह से 5-7 मिनिट की देर भी हो सकती है।

यदि निर्धारित समय से 10 मिनिट बाद तक भी प्रवचन प्रारंभ नहीं हो तो श्री पीयूषकुमारजी शास्त्री से 9414717829, (0141) 2705581 नं. पर सम्पर्क करें।

शाश्वत सिद्धक्षेत्र सम्मेदशिखरजी के निकट 'सोनार बांग्ला' नाम से प्रसिद्ध पश्चिम बंगाल की ऐतिहासिक एवं औद्योगिक महानगरी 'कोलकाता' में सम्पूर्ण पूर्वांचल के मुमुक्षु समाज द्वारा सर्वप्रथम

श्री कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट के अन्तर्गत

श्री महावीर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव

(सोमवार, २६ दिसम्बर ०५ से रविवार, १ जनवरी ०६ तक)

आपको सूचित करते हुये अत्यन्त हर्ष हो रहा है कि पश्चिम बंगाल की ऐतिहासिक एवं औद्योगिक महानगरी आमादेर कोलकाता के भवानीपुर क्षेत्र में एक भव्य दर्शनीय शिखरबद्ध दिगम्बर जैन मन्दिर जिसके भूतल पर वीतराग-विज्ञान पाठशाला, प्रथम तल पर विशाल स्वाध्याय भवन, द्वितीय तल पर आकर्षक जिनमन्दिर तथा भव्य शिखर के कक्ष में विहरमान बीस तीर्थंकर जिनालय व खड्गासन त्रिमूर्ति जिनमन्दिर का निर्माण कार्य पूर्ण हो चुका है।

इसकी प्रतिष्ठा हेतु श्री महावीरस्वामी दिगम्बर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का आयोजन सोमवार, दिनांक २६ दिसम्बर २००५ से रविवार, १ जनवरी २००६ तक अनेक भव्य आयोजनों के साथ सम्पन्न होने जा रहा है।

इस अवसर पर जिनवाणी की अजस्र धारा प्रवाहित करने हेतु अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विद्वान विद्यावारिधि डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल आदि अनेक विशिष्ट विद्वान पधार रहे हैं।

प्रतिष्ठाविधि के सम्पूर्ण कार्य बाल ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री, सनावद के प्रतिष्ठाचार्यत्व में सम्पन्न होगा।

जिनधर्म की प्रभावना के सर्वोत्कृष्ट निमित्तभूत इस महायज्ञ में सभी साधर्मी बन्धुओं को सपरिवार एवं इष्ट मित्रों सहित पधारकर धर्मलाभ लेने हेतु हमारा वात्सल्यपूर्ण हार्दिक आमंत्रण है।

निवेदक

श्री महावीरस्वामी दि. जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव समिति

४३/२ ए, पद्दोपुकुर रोड, भवानीपुर, कोलकाता ह्न ७०० ०२०